बांझ धरती की कोख से

डॉ० प्रभुतसिंह पंवार

जोधपुर (राज०)
1988

प्रकाशक : आर॰ पी॰ प्रकाशन, जोधपुर
आवरण : वी॰ आर॰ प्रजापति
संस्करण : प्रथम, 1988
मूल्य : तीस रुपये
मुद्रक : मधु प्रिण्टर्स, जोधपुर

BANZH DHARTI KI KOKH SE
Poems by Dr. Amrit Singh Panwar

समर्पण

हे स्वर्गीय पिता ! पूज्या माता श्री !
हे गुरुजन श्रद्धेय ! ज्ञान के आगार !
मम साधना के पुष्प हैं ये !
आपके चरणों में सादर समर्पित !

दो शब्द

डॉ० अमृतसिंह पंवार अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति हैं । आज के सामाजिक परिवेश एवं वातावरण से वह क्षुब्ध है । अपने आक्रोश को शब्दों में उतारते हुए वे कहते हैं—

हमारे उसूल और इरादे,
सूली पर टांग दिए
गये हैं ।

आज के मानव की विषम स्थितियों के प्रति कवि की संवेदना अत्यन्त तीव्रतर है । अपने हृदय की वेदना को वाणी देते हुए वे कह रहे हैं—

रोटी के बदले तफड़-तड़फ इन्सान ठोकरें खायेगा,
झूठे इन्सानी नारों को अमृत समझ पी जायेगा ।

और 'वाड़ खेत को खा रही है' यह देखकर कवि दहाड़ उठता है—

भगवान धरा पर आयेंगे,
या खेंच उसे हम लायेंगे ।

कवि वर्तमान की विषमताओं के बीच पला है, विवश व्यक्ति को 'महज एक लाश' मानते हुए उसे दफना कर एक नया इन्सान पैदा करना चाहता है । ऐसा इन्सान—

जिसके हाथों मे चमकता हुआ सूरज,
आहो में तूफान, और सीनों मे
उमड़ती हुई घटाओं का सैलाब होगा ।

कवि स्वय शिक्षक है और अपने को अर्थात शिक्षक समाज को 'देशद्रोही' मानता है, इसका भी सशक्त कारण है उनके पास—

जब तक अशिक्षा, अज्ञान और
अभाव का जीवन वे जीते रहेंगे,
तब तक हम देशद्रोही रहेंगे ।

कितने सीधे सपाट स्वर में कह दिया है पवार ने कि हमें अशिक्षा,

अज्ञान और अभाव मिटाने हैं, अन्यथा हम 'देशद्रोही' हैं। शब्द पढ़ते ही दिल पर सीधी चोट लगती है।

श्री पवार के काव्यालोक में प्रकृति के पटाक्षेपी दृश्य किस तरह विचरण करते हैं, कुछ चित्र देखिये—

सुबह से शाम
सूरज चलते-चलते थक जाता है
× × ×
चन्द्रमा रात भर रंगरेलियाँ मनाता
तारिकाओं के साथ; अठखेलियाँ करता
शिथिल हो जाता है।

कविता महज कविता नहीं होती, कविता का उद्देश्य निःस्सीम है। कविता कहने-सुनने तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए। कविता का व्यापक दृष्टिकोण है, उस पर चिंतन-मनन कर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करना सर्जक का धर्म है। सच बात तो यह है कि सच्ची कविता वही है जो गरीब-अमीर, ऊँच-नीच, जात-पात धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, गाँव-नगर के भेद-भाव को पाट दे।

डॉ० अमृतसिंह पंवार की कविताएँ इन्हीं तानों-बानों से परे रह कर सर्जित हुई हैं। एक बात और—अपने आस-पास को अन्तर्मन में संजोकर प्रकट करना शायद सरल हो किन्तु अत्यधिक कठिन है उसमें प्रेषणीयता उत्पन्न करना—शायद यही सबसे बड़ी विशेषता है इस काव्य संकलन की। सही समीक्षा तो प्रबुद्ध चिंतक वर्ग ही कर पाएगा कि डॉ० पंवार की कविताएँ मात्र कविताएँ न होकर एक जीवंत दृष्टिकोण है।

श्री पंवार 'उदय होते हुए हस्ताक्षर' है, पर उनके कथ्य में सशक्तता भाषा में चमक और शैली में प्रभाव है। साहित्य-जगत में डॉ० पंवार अपनी विशिष्टताओं से निश्चय ही एक नई पर निश्चित पहचान बना पायेंगे।

10 जून, 1988 —मुनि महेश कुमार

आत्माभिव्यक्ति

कवि कोई विशिष्ट प्राणी नहीं होता। वह तो समाज का अभिन्न अंग होता है। उसके द्वारा रची हुई कविता समाज में बदलाव लायेगी—यह कहना भी सम्पूर्ण सत्य नहीं है। हाँ, वह परिवर्तन लाने का मानस बना कर अवश्य चलता है। अपनी छटपटाहट को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। जैसा वह देखता है, भोगता है, समझता है, सोचता है, वही तो उसके शब्दों में उतरता है।

दुःख, पीड़ा, विषमता और यातनायें कवि मन को अधिक उद्वेलित करती है और कवि इससे अछूता भी नहीं रह सकता। जब देश का अधिकांश वर्ग भूख, अभाव, और यातनाओं का जीवन जी रहा है तो कवि-मन इन बातों से कैसे अप्रभावित रह सकता है। इनसे कट कर कवि शायद कल्पनालोक में ही विचरण कर सकता है, यथार्थ की भूमिका पर नहीं—और यथार्थ से आँख मूंद कर चलना शायद सर्जकों के लिये असह्य है। मेरा यह सर्जनात्मक प्रयास भी उसी महान् परम्परा के विकास की एक छोटी-सी कड़ी है।

—डॉ० अमृतसिंह पंवार

पालासनी की हवेली,
माणक चौक, जोधपुर (राज०)
10 जून, 1988

अनुक्रम

महान आत्माओं को श्रद्धांजलि

मानवता को दे अमर दान,
ज्योतिपुंज से छिप जाते हो,
जगती के इस प्रांगण में तव,
नया तेज भर जाते हो ।

हे मनु पुत्र ! शत-शत प्रणाम,
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम ।

इस धराधाम पर अवतरित हो,
जन-मन के पाप मिटाते हो,
युग युग की बहती धारा में,
एक युग बहाव बन जाते हो ।

हे मनु पुत्र ! शत-शत प्रणाम,
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम ।

जुल्मों को सहते सहते तुम,
एक जुल्म नया बन जाते हो,
जब बदले वक्त की धारा कि
तुम स्वयं फनाह हो जाते हो ।

हे मनु पुत्र ! शत-शत प्रणाम,
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम ।

कंटक राह पर खुद चलकर,
सुमनों को सौरभ देते हो,
खुद जीवन में विष पी-पी कर,
शिव स्वयं आप बन जाते हो,

हे मनु पुत्र ! शत-शत प्रणाम,
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।

भावों के सुमन चढ़ा करके,
नव बात नहीं करता हूँ मैं,
तुमने तो शीश चढ़ाया है,
सन्देश प्यार का देने में।

हे मनु पुत्र शत-शत प्रणाम,
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।

वह दिन दूर नहीं

मेहनत करने वालों का जब लोहू सींचा जायेगा,
पानी सम जब खून बहे और कफ़न नहीं मिल पायेगा
सिसक सिसक कर सांसों में घुट घुट कर जब रह जायेगा
तन ढकने को बेवस हो, जब कफ़न चुराने जायेगा,
सच मानो वह दिन दूर नहीं,
भूचाल भूमि पर आयेगा ।
रोटी के बदले तड़फ तड़फ इन्सान ठोकरें खायेगा,
झूठे इन्सानी नारों को अमृत समझ पी जायेगा,
हालत पर अपनी रो-रो कर शिकवा न कहीं कर पायेगा,
बेबस हो मां-बेटी की जब लाज न वह रख पायेगा,
सच मानो वह दिन दूर नहीं,
हिमगिरि खुद झुक जायेगा ।
शोषण करने वालों का जब पाप बहुत बढ़ जायेगा,
मानव के असली मूल्यों का ह्रास जिस दिन हो जायेगा,
तन ढ़कने को माटी होगी और खाने को आहें होंगी,
तब विप्लव होगा, शिव का ताण्डव होगा,
सच मानो वह दिन दूर नहीं
तब महलों में मातम होगा ।

धरती पर जन्मे लोगों पर, धरती वाले ही जुल्म करें,
जब बाड़ खेत को खाजाये रखवाली उसकी कौन करे,
रोटी के बदले लात मिले, उस पर भी दिल की आग सहे,
भगवान धरा पर आयेगा, या खींच उसे हम लायेंगे,

सच मानो वह दिन दूर नहीं,
पत्थर को फूलों से कटना होगा ।

मेरा दृष्टिकोण

हारी हुई बाजी को फिर नहीं पलटता,
मिट गये निशानों को फिर नहीं ढूंढ़ता,
उघड़ गये हैं जख्म तो फिर नहीं सीता,
निकल गया है कारवां तो फिर नहीं रोता,

मेरी मर्जी;
इन्सानी, खोखली, लिचलिची, थोथी
दलीलों को बदलता हूं,
राम हो या रावण हो,
अपनी निगाह से देखता हूं।

समाज की नई रचना की ओर कदम
बढ़ाता हूं
रावण में छिपे गूढ़ रहस्यों को ढूंढ़ना हूं
राम की गलतियों को बेशक, बेहिचक
दूर करता हूं।

मानव की नई पीढ़ी में
बिजलियां भरता हूं,
चाहे वे रचना करें, चाहे वे विनाश करें
दोष आपका नहीं, दोष मेरा नहीं,

दोष सूर्य की निकलती हुई
ठंडी किरणों का है।

रचता इसलिये हूँ कि रचनाकार हूँ,
मिटाता इसलिये नहीं कि विधाता नहीं,
विधाता बनूं न कहीं
इसलिये अपने अहं को मारता हूँ।

भावों की भूमि पर बीज बिखेरता हूँ,
खोदता हूँ, पाटता हूँ, खिलखिलाता हूँ,
भाग्य का भरोसा नहीं करता
जो मिल गया, वह मेरा है
जो दब गया वह मिट्टी का है

आदमी

ईसा की सूली और गांधी की गोली की पहचान है आदमी,
हर रोज जीता है और जीकर मरता है आदमी ।

जीने की चाह में बूंद बूंद रिसता है आदमी,
अपने दामन को बचाता है, फिर भी उलझता है आदमी ।

टूटता है, बिखरता है, बिखरता है, टूटता है आदमी,
फिर भी अक्ल और शक्ल से झूंठा है आदमी ।

अमावस की गहरी रातों में खुद को ढूंढ़ता है आदमी,
सवेरा होने तक पारे-सा बिखर जाता है आदमी ।

बीतती उम्र के घने वनों में भटकता है आदमी,
चेहरों पर चन्द झुर्रियों की पहचान है आदमी ।

पेड़ों पर उल्टी लटकी लाशों की शिनाख्त है आदमी,
आपकी और मेरी हर रोज की पहचान है आदमी ।

कविता हकीकत में बदल जाय

कविता महज एक
कविता होती है
हकीकत नही

कविता से
चीखते बच्चे के लिये
दूध की बोतल नहीं खरीदी
जा सकती

कविता से भूखे के
लिये
एक अदद रोटी
और
पहनने के लिये
सूती कपड़ा भी नही
खरीदा
जा सकता

कविता से
वर्षा में सर ढकने के लिये

फिर लोगों ने तख्तियाँ उठाली हैं

फिर लोगों ने तख्तियाँ उठाली हैं
हाथों में

मुट्ठियाँ बाँधे भीड़ की भीड़
खड़ी है
कतारों में

इस भीड़ में लावारिश बच्चे,
अपाहिज बूढ़े,
अपनी देह का व्यापार करती
बेवस नारियां

आँखों में शोले लिये
आवाजों में
चीखें दवाये
जिन्दा लाशें
श्मशान की खामोशी
उठाये
पागल,
आक्रामक और उत्तेजक

दर्द में सराबोर ये लोग
आँसूओं की बरसात में
खूब नहा चुके है

सिर्फ रोटी का मोह था,
इसीलिये जिन्दा थे
वरना कल ही सुना था—
एक मजदूर
गोली का शिकार होगया,
एक ने
भूख से दम तोड़ दिया
कितना संघर्ष करना पड़ता है
जीने के लिये।

सरोवर के किनारे

सरोवर के किनारे
बैठा है
पथिक
फिर भी
प्यासा है ।

श्रान्त, थकित, चकित
दिशा भ्रमित
देखता है पानी को
निर्निमेष
टकटकी लगाये
पर पी नहीं पाता
क्योंकि—

वह पुरुषार्थ हीन
भाग्य के भरोसे
जिजीविषा की तृषा में
भटकता ही रहा ।

जीवन के
अन्तिम पड़ाव में;

अन्तिम प्रहर में
सरोवर के किनारे
लिजलिजी लुंजपुंज
देह लिये
आया है

शायद अब वह
अतृप्त ही रहेगा
पी नहीं पायेगा,
सरोवर के अमृत को

बांझ धरती की कोख से

बांझ धरती की कोख से
जब एक बीज
फूट निकले तो
समझना
अब अवश्य एक
भीमकाय वृक्ष
लहरायेगा
उसके पत्तों में हरियाली होगी
उसकी डालों के फूलों में
खुशबू और फलों में
रस होगा
तब वह बांझ नहीं रहेगी।

सभी अपनों में बेगाने हैं

घुटन से भरी जिन्दगी
और ये तन्हाई
त्रासदी से भरा मन
और
टुकड़ों टुकड़ों में बटी जिन्दगी
चिथड़े-चिथडे आसमान
और
चिन्दी-चिन्दी रात।
कौन ? कहाँ ?
किसे ढूंढे ?
सभी अपनों में
बेगाने हैं ?
लुटते हुए अरमान
और
सिसकते साजों का
हिसाब कौन रखे ?
रोये तो रोये रात की रानी
शबनम तो हंसती जाती है।

फूल अपनी पंखुड़ियाँ
खूब नोंचे
खुशबू तो बहती जाती है।

मन का मीत
मिले न मिले
पर सावन तो
हरियाता है।

कौन ? कहाँ ?
किसे ढूंढ़े ?
सभी अपनों से, सपनों से,
अपनों में बेगाने हैं।

फूल जब अपनी खुशबू छोड़ दे

फूल जब अपनी खुशबू
छोड़ दे
भौरों का गूंजना,
चिड़ियों का चहकना
और
तितलियों का फुदकना
कुछ कम हो जाय
तो समझलो उपवन में
कुछ होने वाला है

सूरज की तपिश में
कुछ तेजी आजाय
और घबराकर
वह द्रुत गति से
अस्ताचल की ओर
प्रस्थान करे
तो समझलो
आकाश में कुछ
होने वाला है

नीरव शांत
रात्रि में
चन्द्रमा तारों की बारात के
साथ कुछ शोकाकुल
नज़र आये तथा
रात की कालिमा
कुछ और घहराये
तो समझलो गगन में
कुछ होने वाला है।

हम देशद्रोही हैं

हमने
अपनी शिक्षा
उनके श्रम के
पसीने की
कमाई से की है
जो आज तक
अज्ञानी है।

और जब तक
अशिक्षा, अज्ञान
और अभाव
का जीवन
वे जीते रहेंगे—
तब तक हम
'देशद्रोही' रहेंगे ।

हमने अपनी
आँखों के सामने होती
खून की होली
देखी है

अखबारों की बड़ी बड़ी
सुर्खियों में
पढ़ी भी है
फिर भी हम
अनभिज्ञ हैं, अनजान है

आंख मूंद कर
जिन्दी मक्खी
निगल रहे हैं
और दोष
उन पर लगा रहे हैं।
क्या यह देशद्रोह नहीं ?

अरे !
उन्होंने तो जिस्म की
हत्या की है
पर हमने तो अपनी
आत्मा को ही
कत्ल कर डाला है,
और आत्मा की हत्या
जघन्य अपराध है;
सबसे बड़ा पाप है।

जब तक मेरा देश
अभावों, पीड़ाओं,
संत्रासों से गुजरता रहेगा
आप और हम बौने होते
जायेंगे; और जमीन में
धसते जायेंगे
हमारा देशद्रोह बढ़ता
जायेगा ।

हमारे ज़मीर का,
हमारी आत्मा का लेखा
इतिहास में कालिख से
लिख दिया जायेगा ।

कब्र में चीखती लाशें,
दूधमुंहे बच्चों की सदायें
सदियों तक हमें
कचोटती रहेंगी,
क्योंकि हम पढ़े-लिखे 'देशद्रोही' हैं ।

आग से मत खेलो

कितना सोचा,
कितना समझाया
कि आग से
मत खेलो
जल जाओगे ।

पर वह था कि
समझा ही नही
आग से
उलझ पड़ा
मिटा डाला अपने
अस्तित्व को
जल कर
राख हो गया ।

आग से उलझना,
आग से खेलना
उसकी जिद्द थी

ऐसा नहीं कि वह
आग के गुण से

वाकिफ नहीं था
सच बात तो
यह है कि—
"आग से खेलने वाले
आग से डरा नहीं करते"
और
"तलवार की धार पर
चलने वाले तलवार की धार को
देखा और परखा नहीं करते।"

खुशबू की तलाश में भागना बेमानी है

खुशबू की तलाश में भागना
बेमानी है
फिर भी क्यों
भागे जा रहे हैं सब?

जबकि सबको
पता है
चारों ओर
सड़ांध ही सड़ांध है

हमारी मान्यताएं,
हमारी धारणाएं
हमारी वृत्तियां
सभी ध्वस्त होती
जा रही है ।

हमारे उसूल और इरादे
सुली पर टांग दिये
गये है ।
घृणा, ईर्ष्या, और स्वार्थ
का विष

चारों ग्रोर फैलता
जा रहा है।

ग्रब तो—
इन्सानों की
इस बस्ती में
जानवरों का भी
जी घबराने लगा है।

कुत्तों, बिल्लियों ग्रौर
घोड़ों ने भी
वफादारी छोड़ दी है।

फिर भी हम जीने का
ढोंग कर रहे हैं
गोया कंकाल पर जैसे
मांस चढ़ा रहे हैं।

तुम्हारा अस्तित्व

तुम !
हां ! हां मेरे दोस्त तुम
जो अपने अस्तित्व की
बात करते हो
बिल्कुल झूठ है—बिल्कुल झूठ ।

तुम तो कभी के मर चुके हो,
कभी के ।

आज जो तुम दिखाई दे रहे हो
महज एक लाश हो, लाश !
बदबू और सड़ांध से
भरी हुई ।

तुम एक दफा नहीं,
कई बार मर चुके हो,
तुम्हारे मरने और जीने का
हिसाब हैं मेरे पास—

पहली बार मैंने तुम्हें उस दिन मरते देखा है
जिस दिन
तुम्हारे देश की अस्मत,

देश की इज्जत
चौराहे पर नीलाम
होरही थी; और तुम
खीसे निपोरते बेशर्म की तरह
हंस रहे थे।
कहां था तुम्हारा अस्तित्व ?
कहां थे तुम जिन्दा ?

दूसरी बार मैंने तुम्हें
उस दिन मरते देखा है—
जिस दिन तुम
एटम की कुर्सी पर बैठ,
लूली, लंगड़ी, अपाहिज
'जनरेशन'
पैदा करने का ठेका ले रहे थे।
कहां था तुम्हारा अस्तित्व ?
कहां थे तुम जिन्दा ?

एक बार फिर मैंने तुम्हें मरते देखा है
जिस दिन तुमने
सुकरात को विष का प्याला,
ईसा को सूली;
और गांधी को गोली दी थी,
ताकि संसार की सारी पवित्र आत्माएं
इस धरती से उठ जाय; और तुम जैसे
घिनौने भूतों का राज इस धरती पर हो।

मेरी मानो—
सदियों पुरानी
सड़ी गली इस लाश को
जला डालो,
दफन कर दो

फिर देखो—
इस धरती की कोख से
एक नया इन्सान पैदा होगा
जिसके हाथों में सूरज,
बाहों मे तूफान,
और सीने में
उमड़ती हुई घटाओं का
सैलाब होगा ।

उफनते हुये-दरिया और
कड़कती हुई बिजली
उसके कदमों में होगी ।
फिर तुम अपने अस्तित्व की
बात कहना;
मैं सजदा होकर तुम्हारे सामने
सिर झुकाऊंगा ।
मेरी लेखनी तुम्हारे गीत गाएगी,
मानवता तुम्हारे गीत गाएगी ।

तब तुम्हारा अस्तित्व होगा
हां ! हां ! मेरे दोस्त
तब तुम्हारा अस्तित्व होगा ।

यह सच है कि हम सभ्यता की दुनिया में जीते हैं

यह सच है कि
हम सभ्यता की दुनिया में
जीते हैं ।
'हाइजेन्ट्री' में उठते हैं
ग्रौर बैठते हैं

किन्तु वास्तव में हम घुन खाई
लकड़ी की तरह थोथे ग्रौर व्यर्थ हैं ।

गाँधी, नेहरु ग्रौर मार्क्स
की बातें करते है
केवल शब्दों को हवा में
उछालते हैं

ग्रपने मतलब के लिये
दूसरों की रोटी का ग्रास
छीन लेते हैं
ग्रौर बदले में ज़हर का
टुकड़ा दे देते हैं,

क्योंकि हम सभ्यता की
दुनिया में जीते हैं ।

हमने सभ्यता का लबादा ओढ़
रखा है।
जिसकी पर्त-दर-पर्त गरीबों
और पीड़ितों के खून से सीची गई है
ऊपर इस ओर फूलेलों की महक है
अन्दर सड़ांध और विभत्सता का
नृत्य है,
क्योंकि हम सभ्यता की दुनिया में
जीते है
और 'हाइजैन्ट्री' में उठते हैं और
बैठते हैं।

जो रहे चमन में खूब रहे

"जो रहे
चमन में खूब रहे
हम वीरानों में
सौ-सौ चमन
बुला लेंगे।"

जो रहे
चमन में खूब रहे,
और जो वीरानों में
सौ-सौ चमन बुलाये,
खूब बुलाये
और खूब रहे।

है विश्वास
हमें अपनी
बुलन्दियों पर
हम चमन और
वीरानों का
भेद मिटा देंगे।

लूली, लंगड़ी

इस मानवता को नया
प्राण दे देंगे हम
रिसते ज़ख्मों को ठंडक
और सूखे होठों को
महस हास दे देंगे हम

है विश्वास हमें अपनी
बुलन्दियों पर
हम चमन और वीरानों का
भेद मिटा देंगे।

• [मेरे बुजर्ग कवि मित्र गोपाल प्रसाद मुद्गल की उपर्युक्त पंक्तियों के संदर्भ में]

परिवर्तन

पीले पत्तों का
झड़ना
वसंत का
आना
शीत और
आतप का
बारी-बारी आना
परिवर्तन का
द्योतक है।

पर आदमी की
जात है कि
जहाँ खड़ा था
आज भी वहीं है—
वही तीखे विषैले दाँत,
हिंसक पशु
की तरह
काटते, कचोटते,
चीरते, फाड़ते
नाखून।

वहशी दरिन्दे की तरह
झपटता;
कत्ल करता हुआ हैवान
सभी कुछ तो
वही है
जो पहले था–आदिम
पागलपन।

फिर चांद तक पहुँचने वाला
मानव !
कहां परिवर्तनशील है ?

चलने-चलने में अन्तर

इस धरती पर फूल और कांटे
दोनो बिछे हुए है
पर समझदार इन्सान
कांटों के चुभने की परवाह
न करता हुआ
सावचेती से
फूल चुन लेता है
और उनकी सुगंध
समाज में भी
बिखेर देता है।
पर विवेकहीन
मनुष्य कांटों पर चल कर
खुद तो लहू-लुहान
होता ही है
बिछे हुए कांटों को और
ज्यादा बिखेर कर
दूसरों के लिये भी
दुखड़ा पैदा
कर देता है।

दोनों मनुष्यों के
चलने-चलने में अन्तर है—
एक कांटों पर
चलता हुआ भी
औरों को प्यार और
खुशबू देता है ।

जबकि दूसरा खुद को तो
दुःख देता ही है
औरों के लिये भी
दुखड़ा ही पैदा करता है ।

दर्द

गरीब के दर्द से बड़ा है
दर्द मेरा
गरीब का दर्द तो केवल
भूख, रोटी और सर्दी है
जिसे सब कोई समझते हैं

पर मेरा दर्द, मेरी पीड़ा,
मेरी यातना
कोई नहीं समझता
मेरे दर्द अनेक हैं
मसलन—

प्यार का दर्द, नींद न आने का दर्द
काला धन एवं ब्लेकमनी का
सफेद दर्द,
पासपोर्ट की परेशानियों का दर्द,
रहन-सहन और
तड़क-भड़क में
बाजी मार ले जाने की
चिन्ता का दर्द,

सरकारी कानूनों के
भय का दर्द;
रुपये पैसों की
सुरक्षा का दर्द
अनामी लॉकर्स के
खुल जाने
का डर
मन को अधिक बेचैन
कर देता है।

सुबह से शाम

सुबह से शाम
सूरज चलते-चलते
थक जाता है,
और
अपना कार्यभार
गोधूली वेला में
चन्द्रमा को दे
अस्ताचल में
ढल जाता है।

चन्द्रमा रात भर
रंगरेलियां मनाता
तारिकाओं के साथ;
अठखेलियां
करता
शिथिल हो
जाता है; और

भोर अंधेरे धुंधलके में
सूरज के कान में

रात के रहस्य की
कहानी कह
चुपचाप उसीकी सौगात
उसीको सौंप
मदपीये शराबी की मानिन्द
शिथिल हो
लुढ़क जाता है ।

ताजमहल

ताजमहल !
संगेमरमर का मात्र तावूत
नहीं है ।

वह तो दो जवान
धड़कते दिलों की
अमिट कहानी है—
जो इसके नीचे दफन
होते हुए भी
सांस ले रहे हैं
और हर आने-जाने वाले को
अपनी महक से
सराबोर कर रहे हैं ।

शायद

शायद !
तुम्हें नही मालूम कि
हवा में तैरना
जितना आसान है
उतना ही
कठिन है
धरती पर
चलना ।

वैसे
बहुत से लोग
इस धरती की
मिट्टी पर
कीड़े-मकोड़ों
की तरह
रेंगते है
फिर भी चलते
धरती पर
ही हैं।

अकाश में उड़ना
उनकी फितरत में
नहीं
या फिर
हो सकता है
किसी ने उनके
पर नोच
डाले हों
शायद ये भी
संभव है।

भाग्य की रेखा

भाग्य की रेखा
विधाता लिखता है—
शायद यह बात अब
पुरानी हो चुकी है
अपनी रेखाओं का
विधाता
मजदूर
किसान और
श्रमिक खुद है
वह अपने
पसीने से
नया इतिहास
लिखता है–
ऊँची बढ़ती हुई इमारत
खेतों मे सोने सी
लहराती फसलें
धनघनाती, खड़खड़ाती मशीनें
उसीके टपकते लहू की
कहानी है।

इस नये
निर्माण में
प्रमुख भागीदारी
उसीकी है।
फिर कौन कहता है कि
भाग्य की रेखा
विधाता
लिखता है।

मन की बंजर भूमि पर

मन की बंजर भूमि पर
लिख सको तो
एक गीत लिख दो ।

मन की बंजर भूमि पर
रोप सको तो एक
गुलनार का पौधा
रोप दो ।

मन की बंजर भूमि पर
लिख सको तो एक
इतिहास लिख दो ।

बगैर खाद और पानी के
वह स्वयं हरी हो जायेगी ।

मेरे दोस्त !

मेरे दोस्त !
लड़ना होगा तुम्हें
उन लोगों से
जिन्होंने पेट और रोटी
के बीच दीवार खड़ी की है

तुमको अपनी रोटी
उनके पेट से निकालनी होगी
जिन्होंने तुम्हारी रोटियां
अपने पेट में संग्रह
कर रखी है ।

उसके लिये चाहे तुम्हें
मुठ्ठियां भींचनी पड़े ।

देश भक्त हूँ

भूमि से
बंधा हूँ।
इसीका
उपजा अन्न
खाता हूँ

फिर भी
इसीके साथ
बेवफाई
करता हूँ।

जिस थाली में
खाता हूँ
उसीमें
छेद करता हूँ।

क्योंकि मैं
इस देश का
देशभक्त हूँ।

सफेद टोपी पहन

बाबा गाँधी को
गाली देता हूँ
अपनी कुर्सी के लिये
दूसरों की
कुर्सी को
नष्ट भ्रष्ट
कर देता हूँ
क्योंकि मैं सच्चा देश भक्त हूँ।

शालिग्राम

लोगों ने मुझे
इतना घिसा है कि
घिसते घिसते चिकना
शालिग्राम होगया हूँ मैं
अब मुझ पर
धूप-पानी, सर्दी-गर्मी का
कोई असर
नहीं होता
बल्कि, लोग मुझे
पत्थर से भगवान समझ
पूजते है ।

अपने हाथों को कंधों से ऊपर उठाओ

मित्र !
तुम क्यों भय जनित मुद्रा में
सहमे-से खड़े हो

शायद अपने ही
जीवन से
पलायन करना
चाहते हो ?
भागना चाहते हो
अपनी दुःखदाई उन विषम
परिस्थितियों से
जो तुम्हारी इच्छानुसार
तुम्हारे अनुकूल
न बन सकीं ।

तुम्हारी असिमित, अनन्त,
अनियंत्रित इच्छाओं ने
तुम्हें झकझोर दिया है ।

सच को समझने का प्रयत्न
करो—

इच्छाएँ कभी रोने से
पूरी हुई है ?
अपने हाथों को
कंधों से ऊपर उठाओ
फिर देखो —
जिन्दगी
खुद खिलखिलाकर
हंस पड़ेगी ।

तीखा अहम्

उसका तीखा
अहम्
अब नहीं
फुंफकारता है।
विष के साथ
उसके तीखे
दाँत भी
तोड़ डाले
गये हैं।

पशु-सा दहाड़ता
उसका पागल,
पिशाच आक्रोश
अब केवल
उसीकी पीड़ा; उसीका
दर्द बन गया है।

उससे अब
कोई नहीं डरता;
कोई भयभीत नहीं होता।

छोटे-छोटे बच्चे भी
पत्थरों से उसे
लहू-लुहान करने पर
तुले हुए हैं।
उसका ,तीखा अहम्
उसके पैरों तले
रौंदा
जा रहा है
उसने सपने में भी
नहीं सोचा था कि
किस तरह यह सब हो जायेगा।

आँखों से देखने की ताकत

आँखों से देखने की ताकत
अब चुक गई है
इसलिये जाने-अनजाने
अब मैं केवल
पीठ से देखता हूँ।

पीठ से देखने में एक
फायदा है—
वह सब कुछ आँखों में
चुभता नहीं, जो असह्य है

अब न तो आँखों में
आक्रोश आता है, न ही
लाल होती है ये आँखें।

हर सुबह

हर सुबह
मुँडेर पर कौआ कांव कांव
करता है।

सन्देश लाता है
नये मेहमान का
या फिर
नव जीवन का
पर सत्य
कुछ और ही
होता है—
वही बासी पुराना
दर्द
दूध वाले से
झगड़ती पत्नी
बनिये से
लड़ता भाई
और
किरायेदार से
टकराता बेटा

सुबह को और
ज्यादा
कड़वा बना
देते हैं।

शायद दूध वाले ने
आज भी
दूध में
हद से ज्यादा
पानी मिलाया था,
बनिये ने धनियें में
कुछ और,
मिर्ची में कुछ और, तथा
डालडा में
हद से ज्यादा
चर्बी मिलाई थी, और
पूरे पैसों का तकाजा
कर रहा था ।

मकान मालिक ने
पचास वर्ष से
उखड़े हुए प्लस्तर की ओर
नहीं देखा था—
मरम्मत के नाम पर
खाली करवाने की
आंखे दिखा रहा था,
साथ ही किराये को और
ड्योढ़ा करने का
तकाजा
कर रहा था ।

कौए का सुबह-सुबह
कांव-कांव करना
बदलते समय के
संदर्भ में
अब
मेहमान की जगह
सुबह-सुबह
तकाजा करने
आने वालों का ही
सूचक है।

गुरुत्वाकर्षण की शक्ति

गुरुत्वाकर्षण की शक्ति
अब क्षीण
हो चुकी है
इसीलिये तो
आपकी संवेदना मुझको
और मेरी संवेदना
आपको प्रभावित
नहीं कर पाती
भले ही सड़क पर
पड़ी मनुष्य की लाश
जानवर की लाश में
बदल जाय।

आज का मानव

आज का मानव
पानी की
जगह
लहू से नहाने का
आदी
हो गया है
इसीलिये तो
अब वर्षा भी
पानी की नहीं
लहू की
होती है
और बाढ़ भी
लहू की आती है ।

अपनी इयत्ता को खोजता

अपनी इयत्ता को खोजता
मानव
भटक रहा है दर-दर
जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़
अन्ध कन्दराओं तक को
छान डाला है।

ढूँढ़ने की तलाश में
अब तो उसने अपनी
आवाज भी खो दी है।

संत्रस्त, अभिशप्त, हताश
मनुज-पुत्र
अब अपनी इयत्ता को भी
पूरी तरह भूल चुका है।

हत्या

हत्या अब आम बात
हो गई है
चाहे वह बस यात्रियों की हो;
या सब्जी खरीदती
औरत की
या उस बाप और बेटे
की हो, जो अभी-अभी
सड़क पार
कर रहे थे ।
मृत्यु के भयानक केकड़े
अब हमको विचलित
नहीं करते
क्योंकि हमारी संवेदना
मर चुकी है
हमारी आत्मा पत्थर
बन चुकी है ।

गुमराह मत होना

गुमराह मत होना
फूलों की
गंध से
क्योंकि फूलों ने
गंध के साथ
काँटे भी समेट रखे है।

काँटों से उलझ सको
क्षत-विक्षित करा सको,
अपनी सुघड़-सलोनी
देह को

तो फूलों की सुगंध
तुम्हारी है
उसका रग-रग रेशा-रेशा
पंखुड़ी-पंखुड़ी
तुम्हारी है।

मौसम जो बदला है

ये मौसम जो अब
बदला है,
शायद अब उतना
साफ नही होगा
जितना पहले
था ।

सारे काले बादलों ने
घेर लिया है
स्वच्छ आसमान को
अपनी गिरफ्त मे

हो सकता है—
बिजली भी कड़के
और
जला डाले किसी
मासूम के
आशियाने को

हो सकता है—
तूफान भी आये
और उड़ा ले जाये

झुग्गी-झोपड़ियों को
और टीन के
कनस्तरों को

हो सकता है—
वर्षा भी हो, और
पानी की जगह
लहू बरसे,
क्योंकि ये मौसम जो बदला है।

ममत्व

हर वर्ष समुद्र के किनारे
तूफान आता है
अपनी घनी बस्ती के
उजड़ने का अहसास
करते हुए भी
दूर क्यों नहीं चले जाते
ये लोग ?

हर वर्ष बाढ़ आती है
यहाँ
फिर भी क्यों रहते है ये
उसके किनारे
दूर क्यों नही चले जाते ?

हर वर्ष अकाल पड़ता है
उस गाँव में
भूख और प्यास का नंगा
ताण्डव होता है
फिर भी छोड़ क्यों नहीं देते
उस गाँव को ?

तूफान ! बाढ़ ! और अकाल
उखाड़ नहीं
सकते उनको, उनके जुड़ाव से
'ममत्व' है उनको
उस धरती से जहां
उन्होंने जन्म लिया है
केवल मृत्यु ही उखाड़
सकती है उनकी
देह को।

श्रमिक का जीवन

भूखा-प्यासा श्रमिक तड़पता
हल कुदाल और घन लिये
खून पसीना एक करे हम
फिर भी रोटी अल्प मिले

बाबा मरा कर्ज में डूबा
मां उम्मीद लगाये बैठी
कब रोटी भरपूर मिलेगी
आंख फाड़ती तरसी ऐंठी

भूखे, बच्चे
भूखा आंगन
भूखी ड्योढ़ी
छत, मुंडेर सभी है भूखे
भूखी बीवी फटे वसन से
तन ढांपती
भीगे नयन सुखाती है
रो-रो कर फिर अपनी
यों करुण व्यथा सुनाती है—
हल-बैल बिके कर्ज में
फिर भी सूद

न घटता है
लहू हमारा पीकर वह
खुद अमन चैन से जीता है
झोपड़ियाँ तो रहे हमारी
महल उन्हीं का होता है।

उनके कुत्ते-पिल्ले तक भी
दूध मलाई खाते हैं।
मेरा रमुआ जूठन पर ही
अपना मन बहलाता है।

गर्मी आती आतप लाती
तन रिस-रिस कर बहता है
वर्षा में जब धरती खिलती
बस वह सूखा ही रहता है।

सर्दी की वह रात निर्दयी
रूं रूं खूब कंपाती है।
"क्या कसूर किया रे इसने
क्यों जीवन डरपाती है।"

अब मैं हरगिज ऐसा नहीं होने दूंगा

मुझे नही चाहिए तुम्हारे
कधों की बैसाखी
नही चाहिए तुम्हारा संबल
खूब वाकिफ हूं मैं
तुम्हारे षड़यंत्र से ।

पहले तुमने मुझे धर्म की अफीम
पिलाकर, अपाहिज बनाया;
तोड़ डाले मेरे हाथ पैर
मेरी देह को लुंजपुंज कर डाला
ताकि मैं तुम्हारा भिखारी बन सकूं
फिर तुम्हारा दास और पिछलगू

ताकि हर बार तुम मुझे
चाहे जैसे मार सको—
कभी ईसा की तरह
सूली पर टांग सको
कभी सुकरात की तरह
विष का प्याला दे सको
और कभी गांधी की तरह

गोली मार सको, और
फिर पूजा का ढोंग और झूठी
जय जय कार कर सको ।
अब मैं तुम्हारे घिनौने
षड़यंत्र से खूब वाकिफ
होचुक हूँ, खूब !
हर युग में मैंने केवल
देह बदली है; आत्मा नहीं,
और उसी आत्मा की आँखों से
देखा है—
तुम्हारे विद्रूप षड़यंत्र को
शायद ! तुम्हीं ने
सूरज की रोशनी को
मद्धिम किया है ?
सरिताओं की कल-कल और
फूलों की खुशबू को तुम्हीं ने चुराया है ?
अमृत-सी पंचनद की नदियों में
तुम्ही ने विष घोला है ?
और ये कांटे !
हर कदम पर शायद तुम्हीं ने बिछाये हैं
आगाह कर दिया है मैंने
सोये हुए लोगों को
तुम्हारे षड़यंत्र से—
शायद, अब मैं हरगिज
ऐसा नहीं होने दूंगा ।

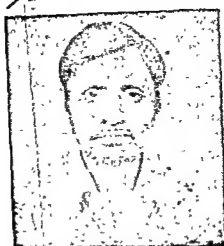
मैं जो लिखता हूँ

मैं जो लिखता हूँ;
मैं जो बोलता हूँ;
मैं जो सोचता हूँ;

उसकी भाषा,
अन्य भाषा
से भिन्न है।

न इसमें लय है,
न ताल
न ही कलापक्ष की
चाटुकारिता।

मेरे शब्दों के पत्थर
आसमान जहाँ नहीं
दिखाई देता
उस पार तक
जाते हैं।



डॉ॰ अमृतसिंह पंवार

नाम : डॉ॰ अमृतसिंह पंवार
जन्म : जोधपुर (राज॰)
शिक्षा : एम॰ए॰, पी॰एच-डी॰
लेखन : शोध ग्रन्थ–हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा के प्रमुख कवियों की प्रेम-व्यंजना, शोध निर्देशक डॉ॰ विमल

हिन्दी :

संकल्प स्वरों के	(संकलित कवि)
वस्तु स्थिति	(संकलित कवि)
निर्निमेष	(संकलित कवि)

राजस्थानी :

हिवड़ै रो उजास	(संकलित कवि)
रेत रो हेत	(संकलित कवि)
सिरजण री सौरम	(संकलित कवि)

इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी व राजस्थानी में सामानान्तर लेखन। समय समय पर आकाशवाणी से हिन्दी एवं राजस्थानी में कविता, वार्ता, एवं बच्चों के कार्यक्रमों का प्रसारण। विभिन्न काव्य गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों, वार्ताओं-चर्चाओं आदि में सक्रिय भागीदारी।

सम्पर्क : पालासनी की हवेली,
माणक चौक, जोधपुर।